Mind and Society, ISSN 2277-6907
Vol.08, No. I & II, March & June 2019, Page No.60 to 63

दक्षिण कोसल क्षेत्र में मूर्तिकला का उद्‌भव एवं विकास

* नितेश कुमार मिश्र

Received	Reviewed	Accepted
15 May 2019	20 May 2019	29 May 2019

प्राचीन भारत में प्रतिमा तथा मूर्ति निर्माण की परंम्परा अत्यंत प्राचीन है हड़प्पा सभ्यता की कला विश्व प्रसिद्ध है। इसके बाद ऐतिहासिक काल के विभिन्न राजवंशों यथा मौर्य, शुंग, कुषाण, सातवाहन तथा गुप्त आदि ने कला को खूब पुष्पित एवं पल्लवित किया। पूर्व मध्य कालीन मूर्तिकला एवं प्रतिमा निर्माण की दृष्टिकोण से दक्षिण कोसल अति विशिष्ट रहा है यहॉ पर शासन करने वाले शरभपुरिय, पाण्डुवंशी, सोमवंशी तथा कल्चुरि राजवंशों ने इस क्षेत्र में कला का अभूतपूर्व विकास किया। इस क्षेत्र में यदि प्रतिमा कला की प्राचीनता की बात करे तो मल्हार से प्राप्त द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व की चतुर्भुजी विष्णु की प्रतिमा उल्लेखनीय है अर्थात् हम कह सकते है कि द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से यहॉ प्रतिमा निर्माण प्रारंभ हो गया था उसके पश्चात लगातार उसका विस्तार होता गया।

विशिष्ट शब्द– प्रतिमा, ऐतिहासिक काल, पूर्व मध्य काल, छत्तीसगढ़।

प्रतिमा का शाब्दिक अर्थ प्रतिरूप होता है प्रतिरूप से तात्पर्य समान आकृति से है प्राचीन भारत में प्रतिमा शब्द का प्रयोग वैदिक युग से ही होता चला आ रहा है। प्रतिमा का प्रयोग वस्तुतः उन्हीं मूर्तियों के लिए किया जाता है जो किसी न किसी धर्म अथवा दर्शन से सम्बधित है। मूर्ति और प्रतिमा में मौलिक अंतर यह है कि मूर्ति सामान्य मनुष्यों या प्रणियों की आकृति होती है किन्तु प्रतिमा शब्द का प्रयोग देवताओं, देवियो, महात्माओं या स्वर्गवासी पूर्वजों आदि की आकृति के लिए किया जाता है।[1] मूर्ति निर्माण एवं प्रतिमा निर्माण की किया में कलाकार की शिल्पगत अभिव्यक्ति दो रूपों में व्यक्त होती है प्रतिमा निर्माण के लिए निश्चित नियमों एवं लक्षणों का विधान है फलतः कलाकार प्रतिमा निर्माण में पूर्णतः स्वतंत्र नहीं रह पाता इसके विपरीत मूर्ति निर्माण में कलाकार स्वतंत्र होता है और उसकी समस्त शिल्पगत दक्षता उसमें प्रस्फुटित होती है।

प्राचीन भारत में प्रतिमा तथा मूर्ति निर्माण की परंम्परा अति प्राचीन है सैंधव सभ्यता की कला विश्व प्रसिद्ध है इसके बाद ऐतिहासिक काल के विभिन्न राजवंशों यथा मौर्य, शुंग, कुषाण, सातवाहन, गुप्त आदि ने कला को खूब पुष्पित और पल्लवित किया।[2] पूर्व मध्य कालीन मूर्तिकला या प्रतिमा निर्माण की दृष्टिकोण से दक्षिण कोसल अति विशिष्ट रहा है यहॉ पर शासन करने वाले शरभपुरिय, पाण्डुवंशी, सोमवंशी तथा कल्चुरि राजवंशो ने इस क्षेत्र में कला का अभूतपूर्व विकास किया ये क्षेत्र कला अध्येताओं के लिए स्वर्ग है। वस्तुतः ये क्षेत्र उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत को जोड़ने वाली कडी के रूप में स्थापित है इसे संक्रान्ति स्थल कहा जाता है इस क्षेत्र का शिल्पी लगातार कला में एक प्रयोग कर्ता हुआ दिखाई पड़ता है इसका प्रमाण ताला की रूद्रशिव की प्रतिमा हैं। इस क्षेत्र की प्रतिमायें इतनी सजीव है जो लगता है तुरंत बोल पड़ेंगी। सम्पूर्ण क्षेत्र में सैकडों मंदिर है मंदिरों की गर्भगृह, द्वारशाखाओं, बाह्य भित्तियों आदि पर स्थापित प्रतिमायें दर्शनीय है। साथ ही इस क्षेत्र में धार्मिक समभाव कला के मध्याम से देखा जा सकता है। यहॉ ब्राम्हण

* *सहायक प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)*

धर्म के शैव, वैष्णव तथा शाक्त सम्प्रदायों के साथ जैन एवं बौद्ध प्रतिमाओं का व्यापक पैमाने पर निर्माण किया गया जो इस बात की पुष्टि करती है।

इस क्षेत्र की यदि प्रतिमा कला की प्राचीनता की बात करें तो मल्हार से प्राप्त द्वितीय शाताब्दी ईसा पूर्व की चर्तुभुजी विष्णु की प्रतिमा उल्लेखनीय है ये भारत की सबसे प्राचीन विष्णु प्रतिमा है। छत्तीसगढ़ के स्थानीय राजवंशो मे गुप्त एवं वाकाटकों के पराभव के अंतिम चरणों में इस क्षेत्र में शरभपुरियों का शासन प्रारंभ होता है इस काल के मुर्ति शिल्प संबंधित अवशेषों की प्राप्ति होती है। शरभपुरियों के पश्चात इस क्षेत्र में पाण्डुवंशीयों का अधिकार हुआ पाण्डुवंशीय के शासन काल में भरतबल, ईशानदेव, तीवरदेव तथा महाशिवगुप्त बालार्जुन की माता महारानी वासटा आदि के समय विभिन्न मंदिरों का निर्माण हुआ। ईशानदेव के समय में खरोद में ईशानेश्वर मंदिर का निर्माण हुआ। तीवरदेव के शासन काल में राजिम के राजीव लोचन मंदिर के निर्माण का प्रथम चरण पूरा किया गया होगा। महाशिवगुप्त बालार्जुन के शासन काल में सम्भवतः राजीव लोचन मंदिर का बचा हुआ भाग पूरा किया गया होगा। इस मंदिर के प्रांगण में बने इसके सामने स्थित पश्चिमी द्वार एवं उससे संबधित अन्य मूर्तियों का निर्माण सम्भवतः इसी के काल में किया गया। पाण्डुवंशी काल के मूर्तियों के अध्ययन के लिए अड़भार, मल्हार, राजिम, खरोद, रतनपुर और सिरपुर उल्लेखनीय है। इन मंडप और विमानयुक्त मंदिर के तोरण, स्तंभ तथा दीवारों के उभरे हुये पटों आदि पर विभिन्न मूर्तियां प्राप्त होती है कुछ स्थानों पर स्वतंत्र किन्तु भग्न मूर्तियां प्राप्त हुई है इनमें खरोद के इंदलदेव मंदिर का तोरण, मल्हार से प्राप्त स्कंदमाता की प्रतिमा तथा अड़भार का तोरण क्षेत्रीय कला की विकास की प्रारंभिक स्थिति को स्पष्ट करते है।[3]

अड़भार तोरण की द्वार शाखा पर बनी छत्र समन्वित घट एवं कमलधारी गंगा–यमुना मूर्तियां एक अन्य पट पर बनी गण एवं नाग मूर्तियां और शिरदल के मध्य स्थापित गरूड़ की आकृति कला की विकास की प्रारंभिक स्थिति की परिचायक है। खरोद, राजिम तथा सिरपुर का मूर्ति शिल्प उत्तरोत्तर विकास परिलक्षित करता है। गंगा–यमुना, द्वारपाल, गण तथा गन्धर्वो आदि की मूर्तियों में मांसलता तथा भाव–भागिता अच्छी तरह प्रदर्शित है। मल्हार की स्कंधमाता की प्रतिमा जिसके दाहिने हाथ में एक अधाखिला कमल है जिसकी पंखुड़ियों के पुंज पर एक त्रिशूल का बड़ा मनमोहक अंकन है। इस प्रतिमा को मुख मांसल है, कन्धे ढलवादार है तथा स्तन उन्नत है एवं कमर पतली है अतः यह मूर्ति अद्‌भुत सौन्दर्य की भी परिचायक है। मूर्तिकला की दृष्टिकोण से मल्हार तथा सिरपुर का शिल्प उल्लेखनीय है मल्हार से प्राप्त जिन एवं कुबेर तथा सिरपुर की बोधिसत्व मूर्तियां अति विशिष्ट है पीले रंग के हल्के बलुऐं पत्थर से निर्मित इन मूर्तियों में शिल्प परम्परा की मर्यादा के अनुसार अंगो की बनावट में अद्‌भुत परिष्कार है। इसके अतिरिक्त उन्नत मूर्तिकला का परिचायक रतनपुर से प्राप्त (रायपुर संग्रहालय) शिवविवाह के दृश्य का शिलापट्‌ट उल्लेखनीय है। शिलापट्‌ट तीन तलों में विभाजित है बीच में एक पीठिका पर शिव और पार्वती का अंकन है। शिव की आकृति के नीचे, दाहिने किनारे पर ब्रम्हा का अग्नि में हवि डालते हुये अंकन है। ऊपर तथा नीचे के तलों में क्रमशः ग्यारह तथा छः आकृतियां है जिनमें विभिन्न देवता, परिचायको एवं ऋषि, गंधर्व आदि सम्मिलित है। इन विभिन्न आकृतियों को उनके परस्पर निर्धारित पद के अनुसार छोटा या बड़ा दिखया गया है। सिरपुर से प्राप्त जांभल (सागर विश्वविद्यालय संग्राहलय) जो बैठी मुद्रा में है इसके हाथ में बीज पूरक और दूसरे हाथ में नेवला है। जांभल का राजसी वेश अनेक प्रकार के अलंकारों से भरा पूरा है, मुकुट, माला, मेखला आदि में मणियों आदि की संरचना बड़े मनोयोग से की गयी है।[4]

इस काल के परवर्ती चरण में मूर्तियों की कला कुछ विकसित दिखाई देती है। इस क्रम में सिरपुर से प्राप्त मंजुश्री एवं विष्णु की विभिन्न मूर्तियॉ शैली की दृष्टि से ये अधिक विकसित प्रतीत होती है।

दक्षिण कोसल क्षेत्र में पाण्डुवंशियों का पतन आठवीं शताब्दी में गया। इस क्षेत्र में नल एवं बाणवंशी शासकों का भी अधिकार रहा नलों एवं बाणों मे समय की कला के कुछ उदाहरण इस क्षेत्र से प्राप्त होते है। मूर्तियों की शिल्प शैली के आधार पर राजिम के विभिन्न पुरातात्विक स्मारकों में नलयुगीन कुछ आकृतियों को पहचाना गया है। बिलासतुंग के राजिम से प्राप्त अभिलेख में उसके द्वारा निर्मित विष्णु मंदिर का उल्लेख है। राजिव लोचन मंदिर के प्रांगण के चार कोंकणों पर जो देव कुलिकाऐं स्थापित है उनमें रखी विष्णु की वामन, योगीश्वर तथा त्रिविक्रम आदि मूर्तियों में न तो पाण्डुयुगीन कला जैसा स्पंदन है न ही इनकी तुलना बाणवंशी कला से की जा सकती है वस्तुतः ये मूर्तियॉ नलयुगीन प्रतीत होती हैं। बाण मूर्ति कला के विषय में

सूचना पाली शैव मंदिर के कुछ भागों पर बनी आकृतियों के आधार पर की जा सकती है। मंदिर की चौखट पर कमल वल्लरी का अद्‌भुत अंकन शिरदल पर बनी बैठी देव मूर्तियों का सूक्ष्म वेश और विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शित उमा–महेश्वर उल्लेखनीय है। किन्तु इन मूर्तियों में पाण्डुवंशियों जैसी कमनीयता नहीं है। दक्षिण कोसल की मूर्तिकला का चरमोत्कर्ष काल कलचुरियों के समय में देखा जा सकता है। कलचुरि कालीन मूर्तिकला के प्रमाण नवीं–दसवीं शताब्दी से मिलना प्रारंभ हो जाते है। और तेरहवीं शताब्दी तक उत्तरोत्तर विकास के साथ मिलते है। इस काल के मूर्तिकला के प्रमाण चन्दखुरी, तुम्माण, जांजगीर, पाली, मल्हार, नारायणपुर, रतनपुर, शिवरीनारायण, खरोद और देव बालोदा आदि स्थानों से प्राप्त होते है। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कलचुरि वंश के प्रारंभिक शासकों के समय तुम्माण के वंकेश्वर, रत्नेश्वर, पृथ्वीदेवेश्वर आदि शिव मंदिरों का निर्माण हुआ। इनमें से किसी मंदिर के अवशेष तोरण रूप में तुम्माण ग्राम में स्थित है। जिसके सिरदल पर आसन मुद्रा में ब्रम्हा, विष्णु एवं शिव तथा द्वारशाखाओं पर विष्णु के विभिन्न अवतारों तथा गंगा–यमुना की मूर्तियॉ देखी जा सकती है।[5]

तुम्माण के समान ही पाली मंदिर में भी मूर्तियां प्राप्त हुयी है पाली मंदिर का निर्माण कलचुरि राजा जाजल्लदेव प्रथम के शासन काल में हुआ था। मंदिर के प्रायः सभी भागों पर मूर्तियां बनायी गयी है। प्रमुख मूर्तियों में सूर्य, नटेश, दिक्पाल एवं नायिकाओं के अतिरिक्त व्याल और काम कला से सम्बन्धित आकृतियां मुख्य है। मंदिर की उत्तरी दीवाल पर बनी नटेश एवं चामुण्डा की मूर्तियां उल्लेखनीय है। कृशकाय एवं कंकाल स्वरूपा चामुण्डा मूर्ति भयंकर है मूर्ति के उदर भाग पर वृश्चिक का अंकन हुआ है। मण्डप के अन्दर तथा बाहर के भागों पर अर्द्धनारीश्वर, लक्ष्मी, सरस्वती तथा तपस्वी लागों का रोचक अंकन हुआ है।

दक्षिण कोसल की कलचुरि कालीन मूर्तियां स्थानीय विशेषताओं से युक्त है इस समय शारीरिक अनुपात की दृष्टि से लम्बी मूर्तियां निर्मित हुयी। इन मूर्तियों के मुख मांसल और कटि एवं पैर कुछ तिरछे बनाये गये है।

मूर्तिकला की दृष्टि कोण से जांजगीर के शैव मंदिर की मूर्तियां पूर्व की तुलना में उत्कृष्ट है। यहॉ से कार्तिकेय, गणेश, सूर्य आदि की मूर्तियॉ मिली है। मंदिर के तोरण के शिरदल पर नन्दी के अभिषेक का दृश्यांकन है जांजगीर का विष्णु मंदिर की मूर्तियों में शैव मंदिर की मूर्तियों की अपेक्षा और विकास दिखाई देता है मंदिर के विभिन्न भागों पर दिक्पाल, अपसरा, व्याल, एवं विष्णु की मूर्तियॉ स्थापित है। विष्णु की विभिन्न अवतारों की मूर्तियॉ मिली है साथ ही शिव एवं ब्रम्हा की मूर्तियां उल्लेखनीय है।

इस काल की मूर्तियॉ लम्बी है साथ ही साथ इनमें साज सज्जा की प्रचुरता दिखाई देती है। धमधा के महामाया मंदिर के बाह्य भित्ति पर बनी गंगा–यमुना की मूर्तियॉ तथा द्वारशाखा की विष्णु अवतार मूर्तियॉ विशेष रूप से नृसिंह और वाराह में आभूषणों की कलात्मकता दर्शनीय है। ये आभूषण स्थानीय विशेषता वाले है किन्तु मूर्ति सम्पूर्ण भाग व्यंजना में एक नई स्फूार्ति दिखाई देती है।[6]

दक्षिण कोसल की कला परंम्परा में शिव एवं विष्णु मूर्तियों की प्रधानता रही है। शिव के स्वरूपों में उमा–महोश्वर एवं नटेश मूर्तियॉ मुख्य है। उमा–महोश्वर की मूर्तियों में कभी–कभी उनके परिवार का अंकन भी मिलता है जिसमें एक ओर गणेश तथा एक ओर कार्तिकेय प्रायः देखे जाते है बाद के मंदिरों में प्रमुख मूर्तियों में सूर्य, शिव एवं महिषा–मर्दिनी की मूर्तियॉ एक मंदिर पर स्थापित की गई है यह धार्मिक समभाव का द्योतक है। देवरबीजा तथा गण्डई शिव मंदिर इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। दक्षिण कोसल की कुछ मूर्तियॉ कुछ विशिष्ट कालधारा की ओर संकेत करते है इनमें व्यक्तियों का अंकन है जिसे कुछ विद्वानों ने पोट्रेट स्वीकार किया है। इनमें राजा रानी, मंत्री, अमात्य, आदि की मूर्तियॉ उल्लेखनीय है। ऐसी मूर्तियों में छपारी से प्राप्त राजा लक्ष्मण देव की जोगी कान्हा के साथ मूर्ति (कलचुरि संवत 840) सहसपुर से प्राप्त यशोराज की मूर्ति आदि इन मूर्तियों में व्यक्तियों खडे अथवा बैठे रूप में और नमस्कार मुद्रा में दिखाया गया है। देव मूर्तियों के सामान ही इनमें प्रभामण्डल परिकर की आकृतियों एवं सिंहासन का अंकन हुआ है। अभिलेखों की प्राप्ति से इन मूर्तियों की स्पष्ट पहचान की जा सकती है।[7]

दक्षिण कोसल से रामायण एवं महाभारत संबन्धित कथानकों का मूर्तियों के माध्यम से प्रदर्शन किया गया है। इस संदर्भ में जांजगीर के विष्णु मंदिर से प्राप्त राम कथा से सम्बन्धित कुछ दृश्य उल्लेखनीय है। इनमें राम, सीता, और लक्ष्मण का वन गमन बालीवध, सीताहरण राम द्वारा सप्तशाल भेदन, सेतुबंध, राम–रावण युद्ध तथा वानर–राक्षस युद्ध के दृश्य प्रमुख है। इस प्रकार के अंकनों में रतनपुर दुर्ग के प्राचीर अंदर स्थित एक शिला खंण्ड पर रावण के यज्ञ का रोचक दृश्यांकन हुआ है। दृश्य में बलिवेदि के सम्मुख दशानन

रावण को अग्नि में अपने मस्तक को चढ़ाते हुये दिखाया गया है।

दक्षिण कोसल के कलचुरि कालीन मंदिरों के बाह्य भित्तियों पर काम कला से सम्बन्धित अंकन भी देखने को मिलता है। इनमें जांजगीर के विष्णु मंदिर, पाली के शिव मंदिर तथा आरंग के जैन मंदिर आदि मंदिरों में काम अंकन देखा जा सकता है। संभवतः इस प्रकार अंकन चन्देलों तथा उडीसा से सांस्कृतिक आदान–प्रदान के कारण संभव हुआ।[8]

दक्षिण कोसल की कलचुरि कालीन परम्परा का विस्तार क्षेत्र व्यापक था, इस कला के उदाहरण बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग, राजनांदगांव, कवर्धा आदि क्षेत्र से तो प्राप्त होते ही है इसके अतिरिक्त अन्य अनेक क्षेत्र जैसे बस्तर में नारायणपुर तथा बारसूर आदि स्थानों पर, महाराष्ट्र के चांदा जिले में मारकंडा की मूर्तियों में तथा उडीसा क्षेत्र भी इस कला का प्रभाव देखा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि इस क्षेत्र में मूर्तिकला की एक लम्बी परम्परा रही है जो अपने आप में समकालीन संस्कृति को संजाये हुये है। इन मूर्तियों के माध्यम से समकालीन विभिन्न राजवंशों के धार्मिक पक्ष तथा संस्कृति को समझने में मूर्तिकला ने सदैव सहयोग किया है।

सन्दर्भः

1. श्रीवास्तव, बृजभूषण, 2010 प्राचीन भारतीय प्रतिमा–विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी पृ. 1
2. जोशी, पुरूषोत्तम नील, 2008 प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी पृ. 8
3. मिश्र रमानाथ, 1978 भारतीय मूर्तिकला, दिल्ली पृ. 242–245
4. मिश्र रमानाथ, 1987 स्कल्पचर्स ऑव डाहल एण्ड दक्षिण कोसल, दिल्ली पृ. 110–112
5. तिवारी मारूतिनन्दन एवं गिरि कमल, 1991 मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, वाराणसी पृ. 117–120
6. झा मंगलानन्द, 2008 दक्षिण कोसल के कलचुरि कालीन मंदिर, रायपुर पृ. 116
7. स्टेला क्रैमरिश, 1956 इण्डियन स्कल्पचर, कलकत्ता पृ 110–11
8. अली रहमान, 1989 आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव कलचुरि, दिल्ली पृ. 90–92